National Journal of Multidisciplinary Research and Development
ISSN: 2455-9040
Impact Factor: RJIF 5.22
www.nationaljournals.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 679-681

भक्ति साहित्य की प्रासंगिकता

प्रशान्त सिंह
वरिष्ठ अनुसंधान अध्येता, हिन्दी विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश, भारत।

प्रस्तावना

भक्तिकाल को हिन्दी साहित्य का स्वर्ण–युग कहा जाता है। समृद्ध भाव–बोध और सहज कला–चेतना के कारण भक्ति–काव्य वास्तव में स्वर्ण–सा सुंदर और मूल्यवान कविता काल है। इसकी मूल्यवत्ता युग सापेक्ष न होकर शाश्वत है, इसका प्रदेय इसका अमर संदेश है जो सिर्फ हमार लिए ही नहीं सम्पूर्ण मानव–जाति के लिए उपयुक्त है और समृद्ध संस्कृति का सार अथवा निचोड़ है। 'भक्ति' शब्द की व्युत्पत्ति 'भज' धातु में त्रिन प्रत्यय के योग से हुई है। 'भज' धातु का अर्थ है– सेवा करना। अतः इसमें सेवा से सम्बद्ध, श्रद्धा, अनुरक्ति, समर्पण इत्यादि सभी प्रकार के भाव आ जाते हैं। इन सभी भावों के मूल में 'प्रेम' किसी न किसी रूप में विद्यमान रहता है, अतः भक्ति का निष्पादक तत्व 'प्रेम' है। इसके अभाव में भक्ति की कल्पना नहीं की जा सकती।

भक्तिकाल एक महान जन–आंदोलन का काल है। मध्यकाल में भारत के उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम सभी दिशाओं में भक्ति का 'दीप' प्रज्वलित हुआ, उसने अंधकार के गर्त में समाज के समक्ष नये और उदात्त लक्ष्य प्रस्तुत किये और कोटि–कोटि हारे हुए दीन, दुर्बल जनों को आत्मसम्मान के साथ अपनी खुद की धरती पर खड़े रह सकने का साहस दिया। भारत के अन्यान्य प्रदेशों में और उनकी भिन्न–भिन्न प्रांतीय भाषाओं में लिखित भक्तिकाव्य की अंतर्धारा समान है। मुंशीराम शर्मा के शब्दों में– ''भक्ति आंदोलन का अध्ययन मुख्यता भारतीय इतिहास, साहित्य एवं दर्शन के सम्यक् विवेचन पर आधारित है। प्राचीन साहित्य में भक्ति तत्वों का पर्याप्त विकसित रूप दृष्टिगत होता है।''[1] हिंदी साहित्य में भक्ति चेतना का उद्भव और विकास भी इसी आंदोलन का एक सशक्त रूप है।

'प्रासांगिकता' का मूल अर्थ है– प्रसंग, जिसका अर्थ घटना, स्थिति, परिस्थिति आदि के रूप में लिया जाता है, व्याकरण में यह 'संज्ञा' है। प्रसिद्ध समीक्षक डॉ0 नगेन्द्र के अनुसार– ''सार्थकता या प्रासंगिकता आधुनिक समीक्षा का नवीन शब्द–प्रयोग हे, परन्तु इसका अर्थ यही नहीं कि इसकी धारणा सर्वथा नयी है। प्रासांगिकता का सम्बंध मुख्यता पुराने साहित्य से होता है और वर्तमान युग के संदर्भ में पुराने साहित्य की सार्थकता या प्रासांगिकता का देखना लक्ष्य होता है।''[2]

पुराना साहित्य जिस समय लिखा गया उस समय के मानवीय मूल्य, सामाजिक मूल्य, मनुष्य की मानसिकता, समाज के लिए तो उपयुक्त थे ही आज भी वह उपयुक्त है या नहीं यह देखना ही प्रासांगिकता है। विगत युगों का साहित्य आज हमारे किन मानसिक तत्वों के लिए उपयोगी है ? वह साहित्य समाज को आगे ले जाता है ? या पीछे ढकेलता है ? इन प्रश्नों का उत्तर ही प्रासांगिकता कहलाती है।

भक्तिकालीन साहित्य सर्वकालिक मानवीय मूल्यों का आख्यान है। यकीनन उसकी सीमाएं है और बहुत ही स्पष्ट हैं परन्तु उसके आदर्श भी कम कमनीय नहीं हैं। भक्ति के आवरण में वह अंततः मनुष्य की ही बात है, इस दुनिया को बेहतर और सुंदर बनाने का सपना है। जब इसकी प्रासांगिकता का प्रश्न उठाया जा रहा, तो निश्चय ही इसके महत्व को भी सवालों के अपनी सीमाओं और उपलब्धियों को परखने–जांचने के लिए हमेशा तैयार रहना चाहिए। जब पाठ्यक्रमों के परिप्रेक्ष्य में बात करते हैं तो कुछ सवाल हमारे सामने उपस्थित होते हैं–

पहला प्रश्न तो यही उठता है कि इसे पाठ्यक्रम में सम्मिलित क्यों किया जाए? वास्तविकता यह है कि भक्तिकालीन साहित्य हमारी ऐतिहासिक उपलब्धि है, हमारी स्मृतियां, संस्कृति है और समाज इसमें उपस्थित है, इसे यूं ही विस्मृत नहीं किया जा सकता है। परम्परा और इतिहास के संदर्भ में हम देखते हैं कि इतिहास में जो भी कुछ है वह सब परम्परा नहीं बन सकता। इतिहास का उतना ही अंश परम्परा बन पाता है जितना जीवंत होता है। इतिहास की परम्परा को विकसित करने की शक्ति 'राम' में थी, 'कृष्ण' में थी, गौतम बुद्ध और महात्मा गांधी, तुलसी, कबीर, जायसी, सूर में थी। ये लोग भी इसलिए परम्परा स्थापित कर सके कि इन्होंने रूढ़ि को, नयी दिशाओं का निर्माण किया और इससे बढ़कर वृहत मानव आस्था की प्रबुद्ध चेतना को इन्होंने व्यापक मानव–कल्याण की बात को लेकर प्रेरित किया। इसी कारण ये आज भी प्रासंगिक है। मध्यकालीन हिंदी भक्ति साहित्य में सामाजिक मूल्यों के चित्रण होने के कारण आज भी वह साहित्य प्रासंगिक है। जब संस्कृति की बात कर रहे तो इसमें कोई शक नहीं कि भारतीय संस्कृति हमेशा ही आध्यात्म प्रधन नहीं है, परन्तु यह बात भी उतनी ही स्पष्ट है कि हमारे ऋषि–मुनियों ने, आचार्यों ने, पंडितों ने, विद्वानों ने ऐहिक जीवन की कभी उपेक्षा नहीं की। भौतिकता और आध्यात्मिकता का समन्वय हमारे संस्कृति की सबसे बड़ी विशेषता है। हमारी संस्कृति वास्तव में शाश्वत जीवन–मूल्यों की एक सुंदर और मजबूत इमारत है। इसी कारण संसार भर में उसका मान है। इसका अर्थ केवल 'फील गुड' नहीं है, उसके उज्ज्वल और बदनुमा चेहरा दोनों इसमें दर्ज है। समाज के अंतर्गत जो अनेक प्रकार के आचरिक और मानसिक विकार ज्यादा हैं, उनको निर्मूल करके आदर्श समाज और आदर्श मानव की संकल्पना और संस्थापना ही संतों का काम्य रहा है। अपनी इसी कामना को साकारता के लिए वे सामाजिक विसंगतियों पर बड़ा तीव्र और तीखा प्रहार करते हैं। डॉ0 प्रहलाद मौर्य के शब्दों में– ''मध्यकालीन समाज में प्रचलित धार्मिक आडम्बरों, परम्परागत कुरीतियों एवं मिथ्याचारों में लगे जन समुदाय की कटु आलोचना की है, क्योंकि तत्कालीन जनता स्मृति, वेद, पुराण तथा धर्मादि के नाम पर विविध वर्गों में बंट गयी थी। जिससे सामाजिक एकता के सूत्र टूट गए थे। मानव–मानव में अनेक भेद की दीवारें खड़ी हो गई थीं। इन भेद की दीवारों को गिराकर

समाज को एक बार धरातल पर लाना था। कबीर ने संत समाज की स्थापना की। यह संत समाज ऐसा जनसमाज था जिसमें किसी भी जाति का व्यक्ति आदर पाता था।''[3]
संतों ने तत्कालीन भारतीय समाज की अवस्था का यथार्थ रूप अपनी आंखों में देखा था और उनमें जो नकारात्मक बातें थी उनके विरुद्ध अपनी विद्रोही भावना को प्रकट किया था–

''एक बूंद एक मलमूतर, एक चाम, एक गूदा।
एक जाति ते सब उपजा, कौन ब्राह्मण कौन सूदा।।''[4]

भक्ति साहित्य एक नितांत निजी विषय है, इसे भक्ति साहित्य से पुष्ट किया जा सकता है, इसके नाम पर होने वाले पाखंडों, दिषावों के सम्बंध में एक स्पष्ट समझ को बनाने में मदद मिलेगी। बहुत आवश्यक है कि यह समझ बचपन से ही कायम हो ताकि छूआ–छूत जैसे विचारधारा बच्चों में पैदा न हो।
भक्ति साहित्य का कौन सा हिस्सा शामिल किया जाए ? यह काफी विचारणीय प्रश्न है कि हम भक्ति साहित्य के कौन से हिस्से को सम्मिलित करें जो बहुत आवश्यक हो अर्थात जिनके सम्बंध में छात्र को बचपन से जानकारी मिले। जिस प्रकार समाज में जाति का विभाजन हुआ था जिसके कारण समाज आपसी मतभेदों में बंटा हुआ था परन्तु 'सूरदास' ने भक्ति के ही सहारे सारे भक्तों को एक तुला पर तौलकर तत्कालीन समाज में प्रचलित वर्ण–व्यवस्था की प्रथा का घोर विरोध किया। कृष्णभक्त कवियों का दृष्टिकोण नितांत समाजवादी तथा प्रगतिशील ही रहा। कृष्ण भक्त कवियों ने भक्ति के क्षेत्र में बड़ी क्रांति पैदा की है और ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी वर्गों को समान मान दिया है–

''जाति–जाति कुलकानि न मानत वेद पुरानन साखे।
जाति गोत कुल नाम गनत नहीं रंक होइकै रानों।
ऊंच–नीच हरि गिनत न दोई।''[5]

सूरदास तथा अन्य कृष्ण भक्तों ने भी भक्ति के माध्यम से सामाजिक एकता को प्रस्थापित करने का प्रयास किया है।
तुलसीदास ने मध्यकालीन समाज में जाति व्यवस्था के कारण होने वाले विघटन को रेखांकित किया है। उनका मानना था कि जाति–व्यवस्था से समाज टूटता है। वे भक्ति में सभी जातियों के अधिकारों को सुरक्षित रखने के पक्षपाती थे। उन्होंने लिखा है–

''गांव बसत बामदेव में कबहूँ न निहोरे।
अधिभौतिक बाधा भई, ते किंकर तोरे।
बेगि बोलि बलि, बरजिए करतूति कठोरे।
तुलसी दलि, रुध्यो चहै, सठ साखि सिहोरै।।''

तुलसी ने मानव–जीवन का जो आदर्श जगत के सम्मुख रखा है, वह कोरी 'कल्पना' या चिंतन–मनन भर की वस्तु नहीं, जीवन में उतारने की चीज है, व्यवहार में ढ़ालने की चीज है, आचार में अपनाने की चीज है, 'रामचरितमानस' तो भारत में जनसाधारण के जीवन और विचारों में घुमा–मिला था, है और रहेगा। सामाजिक संतुलन एवं एकता के लिए इस प्रेम की आवश्यकता है।
कृष्ण भक्ति कवियों ने भक्ति के क्षेत्र में नई क्रांति पैदा की है और जाति भेद की दीवार को धराशाही कर दिया है तथा ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र सभी वर्गों को समान माना है। उन्होंने यह स्पष्ट किया था कि ''भगवान की दृष्टि में वर्ण, जाति, कुल, गोत्र आदि में कोई भेदभाव नहीं है। वे सबको एक ही ईश्वर की संतानें मानते है।'' सूरदास ने जाति–पाति के भेदभाव की व्यर्थता को समझाते हुए कहा है–

''कास्यो सुक श्री भागवत विचार
जाति पाति कोउ पूछत नाहिं श्रीपति के दरबार।''[7]

सूरदास के काव्य में सांस्कृतिक एवं भावात्मक एकता के दर्शन होते हैं तो तुलसीदास के काव्य में राम राज्य और उनका आदर्श है। इसमें जिस समाज का वर्णन है, हमारी सम्पन्न संस्कृति का सार है। वह भारतीय संसकृति का आदर्श है। क्योंकि समाज में बिखराव टूटन, अलगाव आदि बढ़ते जा रहे हैं। जिस कारण से स्कूली कक्षाओं में ही बच्चों को तुलसी के 'रामराज्य' के सम्बंध में बताना जरूरी है।
सूफी कवियों और कृष्णभक्त मुसलमान कवियों की सम्मिलित करके बच्चों को हिंदी की सामासिक प्रकृति से अवगत कराना चाहिए, क्योंकि समाज जिस प्रकार की खाई बनी हुई है जाति का, वो केवल आपसी भाईचारों को प्रभावित करता है। हमें स्कूलों में ही बच्चों को सूफी कवियों और मुसलमानों कवियों के सम्बंध बताना चाहिए कि किस प्रकार वे लोग आपस में मिलकर रहते थे। सूफी कवि मुसलमान होते हुए भी उन्होंने हिंदू धर्म और भारतीय परम्पराओं को सुंदर ढंग से प्रस्तुत किया। हमारी सूफी प्रेमकाव्य हिन्दू और इस्लामी दोनों संस्कृतियों के सार अथवा निचोड़ है। जायसी और अन्य सूफी कवियों ने अपने साहित्य में तदयुगीन समाज के रीति–रिवाजों का उल्लेख किया है। सूफी काव्य ने भारत में हिन्दू मुस्लिम सौमनस्य का महत्वपूर्ण कार्य किया और उनका प्रेम दर्शन इसी दिशा में एक ईमानदार प्रयत्न है। मध्यकालीन भोगवाद के विरोध में अपने सादे–सरल जीवन को जनता के समक्ष प्रस्तुत कर सूफी कवि प्रसिद्ध हुए। डॉ0 असदअली का कथन है कि– ''सूफियों ने मनुष्य को एक दृष्टि से देखा तथा सबके दिलों में एक खुदा का नूर जगाने का प्रयत्न किया। उनकी कथनी–करनी एक थी सादा जीवन व्यतीत करते थे तथा अपने अनेक गुणों के कारण वे हिन्दू–मुसलमान दोनों वर्गों में समान आदर की दृष्टि से देखे जाते थे।''[8]
सूफियों से सामाजिक एकता की बात को आज का मनुष्य सीख लेगा तो सारी सामाजिक झंझटों से वह मुक्त हो जायेगा। दुनिया भर में मची मार–काट और हिंसा के मूल में लोभ है, जमाखोरी और संग्रह की अबाध प्रवृत्ति है। बड़ा से बड़ा युद्ध लालच से ही पैदा होता है। यह समय 'ये दिल मांगे मोर' का है। और भक्ति साहित्य संतोष धन की बात करता है। जायसी ने तत्कालीन समाज में व्याप्त काम, क्रोध, मद, लोभ आदि के अनियंत्रित प्रवाह को तोड़ा है। इन विकारों को जायसी ने समाज के लिए विघातक माना है–

''काम क्रोध तिस्त्रामद माया,
पांचों चोर न छॉड़ाहे काया।
नवों सेंध तिन्ह के दिठियारा,
घर मूसहिं निसि की उजियारा।''[9]

कबीरदास जी ने भी संतोष धन की बात कही है। वे भगवान से अपने लिए उतना ही धन चाहा है जिससे परिवार का निर्वाह हो जाए। भगवान से वे उतना ही मांगते हैं–

''सांई इतना दीजिए जामैं कुटुम्ब समाय।
मैं भी भूखा न रहूँ साधु न भूखा जाए।''[10]

कबीर के उपर्युक्त विचार आज भी प्रासंगिक है। हमारे देश की

जनसंख्या का बहुत बड़ा हिस्सा एक वक्त भी ढंग से जुटा नहीं पाता है या बड़ी मुश्किल से एक वक्त की ही रोटी खा पाता है। ये भूखे पेट से ग्रसित लोग देश के हित की बात क्या सोच पायेंगे ? इनका शैक्षिक विकास कैसे संभव होगा ? इनके विचार सात्विक विचार कैसे हो पायेंगे ? आज लगभग हरेक क्षेत्र में भ्रष्टाचार रूपी राक्षस फूल रहा है। दिन पर दिन वह अधिक फूलती जा रही है। इसके फूलने के पीछे मनुष्य की अधिक धन प्राप्त करने की प्रवृत्ति है। अधिक संपत्ति प्राप्त करने की लालसा है। संत रैदास धन को झूठी माया के तुल्य घोषित करते हैं मनुष्य को इस झूठी माया से सचेत रहना चाहिए इस माया के जाल में मनुष्य एक बार फंस गया तो निकलना मुश्किल होता है, यह जानते हुए भी मनुष्य इसमें फंसता जा रहा है–

''धन जीवन की झूठी आसा, सति सति भाषै जन रैदासा।''[11]

दुनिया भर में मची मार–काट और हिंसा के मूल में लोभ है, जमाखोरी और संग्रह की अबाध प्रवृत्ति है। बड़ा से बड़ा युद्ध लालच से ही पैदा होता है। यह समय 'ये दिल मांगे मोर' का है। भक्ति साहित्य समाज में आपसी, भाई–चारा, प्रेम, घर इन सबके प्रति संवेदनशील बनाएगा। हमारा कल क्या हो इसे निर्धारित करने में स्कूल बड़ी भूमिका निभा सकते हैं। और इस 'संतोष धन' की सीख के लिए इस स्तर पर सबसे ठोस प्रयास किये जा सकते हैं। हिन्दी पाठ्यक्रमों में भक्ति साहित्य का महत्व केवल स्कूली कक्षाओं तक ही नहीं है बल्कि यह सर्वकालिक संदेश देने वाला साहित्य है। उनका गहन अध्ययन, मनन–चिंतन और पुनःपारायण आज वांछनीय ही नहीं किंचित अनिवार्य भी हो गया है।

सन्दर्भ

1. भक्ति का विकास, डॉ0 मुंशीराम शर्मा, पृ0 111
2. वीणा, जनवरी 1991, अंक–1, पृ0 42
3. कबीर का सामाजिक दर्शन, डॉ0 प्रहलाद मौर्य, पृ0 130
4. कबीर ग्रंथावली, संपा0 श्यामसुंदर दास, पद–37/3–4, पृ0 108
5. संत सुधार, दादू, पृ0 67
6. विनय पत्रिका, तुलसीदास, पृ0 8/3–4
7. सूरसागर, पृ0 2/231
8. तुलसी की साहित्य साधना, डॉ0 लल्लन राय, पृ0 54
9. पद्मावत, संपा0 वासुदेवशरण अग्रवाल, प्रेमखंड, पृ0 54
10. कबीर ग्रन्थावली, संपा0 श्यामसुंदर दास, दोहा–149
11. संत कवि रैदास, योगेश गुप्त, पृ0 68